Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 8 | ISSUE : 2 | FEBRUARY 2022

संस्कृत साहित्य का पर्यावरण संरक्षण में योगदान

कृष्ण कुमार शर्मा [1]

[1] सहायक आचार्य (संस्कृत), राजकीय महाविद्यालय, भादरा, जिला हनुमानगढ़ (राजस्थान)

ABSTRACT:

पर्यावरण संरक्षण वर्तमान का बहुत ज्वलन्त विषय है जिस पर निरन्तर वैश्विक स्तर पर मन्थन चल रहा है किन्तु फिर भी इस दिशा में कोई सकारात्मक परिणाम नहीं निकल रहे हैं। परन्तु जब हम संस्कृत साहित्य का अध्ययन करते हैं तो उनमें चित्रित सुरम्य प्रकृति हमारा मन हर लेती है। इस तथ्य के आधार पर कहा जा सकता है कि हमारे संस्कृत साहित्य ने पर्यावरण संरक्षण में अहम् योगदान अवश्य दिया है। संस्कृत साहित्य में ऋग्वेद से प्रारम्भ करके अद्यावधिपर्यन्त सम्पूर्ण साहित्य परिगणित है। जिनमें प्रकृति को साक्षात् देवता एवं मानव के रूप में चित्रित करके इनकी महत्ता को समझा है। जिनसे वर्तमान में प्रेरणा लेना नितान्त आवश्यक है।

KEYWORDS:

पर्यावरण संरक्षण, संस्कृत साहित्य, प्रकृति, ऋग्वेद, आश्रम, पात्र, नाटक, पद्य।

पर्यावरण शब्द परि एवं आ उपसर्ग पूर्वक वृञ् धातु से ल्युट् प्रत्यय के प्रयोग से बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ है – ''परितः आवरणम्'' अर्थात् चारों ओर का वातावरण। जिसमें हवा, पेड़, पौधे, जल, मिट्टी आदि सभी समाहित हैं। इन सब को गुणात्मक स्थिति में बनाये रखना या इनमें कोई नकारात्मक परिवर्तन न होने देना ही पर्यावरण संरक्षण है। सृष्टि के अस्तित्व के लिए पर्यावरण का शुद्ध रहना नितांत आवश्यक है किंतु मनुष्य ने अपने भौतिक भोग–विलास के लिए पर्यावरण का अनियंत्रित दोहन कर दिया है। अतः भावी पीढ़ी के हितों को दृष्टिगत रखते हुए सतत विकास की अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में पिछले दशकों से पर्यावरण सरंक्षण पर बल दिया जाने लगा है।

उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में यह चिन्तनीय विषय है कि जब वर्तमान में पर्यावरण निरंतर जीवन के प्रतिकूल होता जा रहा है तो क्यों न हमें अपने प्राचीन अतीत की ओर देखना चाहिए एवं पर्यावरण संरक्षण के प्रति कर्तव्यनिष्ठ होना चाहिए। जब हम अतीत का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं तो हमारा ध्यान प्रथमतः संस्कृत साहित्य की ओर ही जाता है। यह बात पर्यावरण के बारे में भी पूर्णतः युक्ति–युक्त है। वेद से अद्यावधिपर्यन्त संपूर्ण संस्कृत साहित्य प्रकृति चित्रण एवं प्रकृति प्रेम के हृदयावर्जक वर्णन से परिपूर्ण है। संस्कृत साहित्य में चित्रित मानव समाज प्रकृति या पर्यावरण संरक्षण के प्रति अधिक सजग है।

वेदों में प्रकृति का चित्रण बहुत ही सुंदर रूप में किया गया है। विभिन्न मंत्रों में वृक्षों, औषधियों, पर्वतों, नदियों, वायु, जल, सूर्य, चंद्रमा, वरुण,, इन्द्र, मेघ, वर्षा आदि का वर्णन किया गया है एवं प्रकृति की देव स्वरूप में स्तुति की गई है।

जल को अमृत एवं औषधि का स्रोत माना है –

''अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये।''[1]

वायु से यह कामना की गई है कि वह सदैव हमारे लिए कल्याणकारी रहे –

''यददो वात ते **गृहेऽमृतस्य** निधिर्हितः। तत न देहि जीवसे।।''[2]

हमारा सम्पूर्ण जीवन पृथ्वी के संसाधनों पर ही निर्भर है अतः पृथ्वी को माता की संज्ञा दी गई है –

''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।''[3]

जब हम पृथ्वी से अन्न, वनस्पति, खनिज आदि पदार्थ प्राप्त करने का प्रयास करें तो पृथ्वी के मर्म स्थलों पर आघात न हो –

''वतते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदति रोहतु।

मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम।।''[4]

ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् ग्रंथों में भी प्रकृति का महिमामण्डन किया गया है।

महाकवि वाल्मीकि भी पर्यावरण के प्रति सजग हैं। उनके मुख से रामायण महाकाव्य के प्रस्फुटन का मूल कारण ही प्रकृति है जब क्रौञ्च पक्षी को बाण से मरा हुआ देखा तो स्वतः ही काव्य धारा उनके मुख से उत्पन्न हो गई थी।

रामायण के प्रमुख पात्र श्रीराम सर्वत्र प्रकृति के सन्निकट हैं। रामायण का अरण्यकाण्ड तो पूरा ही प्रकृति चित्रण है। श्रीराम वन, वन्य जीवों एवं आश्रमों की रक्षा के प्रति समर्पित हैं।

भरत भी पर्यावरण के प्रति संवेदनशील हैं। वे जब ऋषि के आश्रम में जाते हैं तो सेना को साथ नहीं ले जाते हैं ताकि आश्रम के वृक्षों की हानि न हो –

''ते वृक्षानुदकं भूमिमाश्रमेषूटजांस्तथा।

न हिंस्युरिति तेवाहमेक एवागतस्ततः।।''[5]

महाभारत महाकाव्य में भी पर्यावरण संरक्षण की महत्ता प्रकट की गई है। कौरवों–पाण्डवों की शिक्षा, वनवास आदि प्रसंग तत्कालीन समाज की प्रकृति के प्रति सन्निकटता को सिद्ध करते हैं।

मृत्युशय्या पर आसीन भीष्म पितामह जब युधिष्ठिर को उपदेश देते हैं उस समय भी वृक्षारोपण के महत्त्व को बताते हैं। वे कहते हैं कि वृक्षारोपण करने वाला मनुष्य अतीत में जन्मे अपने पूर्वजों, भविष्य में जन्म लेने वाली संतानों एवं अपने पितृवंश का तारण करता है –

''अतीतानागते चोभे पितृवंशं च भारत।

तारयेत वृक्षरोपी च तस्मात् वृक्षांश्च रोपयेत्।।''[6]

पितामह ने आगे के पद्य में वृक्षारोपण करने वाले मनुष्य एवं वृक्षों के मध्य पिता–पुत्र का पवित्र संबंध बताया है –

''तस्य पुत्रा भवन्त्येते पादपा नात्र संशयः।''[7]

उपर्युक्त काव्यों के पश्चात्वर्ती ग्रन्थों में भी कवियों ने प्रकृति के प्रति अगाध स्नेह प्रकट किया है। आद्य नाटककार भास ने प्रकृति को अपने सभी रूपकों में प्रमुख स्थान दिया है। स्थान–स्थान पर सरोवर, लताकुंज, भ्रमर, पशु–पक्षी, वन, आश्रम आदि का उल्लेख किया है।

स्वप्नवासवदत्तम् में तो राजा उदयन लता मण्डप में इसलिए प्रवेश नहीं करते हैं ताकि भ्रमर युगलों की स्वतंत्रता में बाधा उत्पन्न न हो जाए –

''पादन्यासविषण्णा वयमिव कान्ता वियुक्ताः स्यु।''[8]

महाकवि कालिदास पर्यावरण के प्रति अतीव संवेदनशील हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं में प्रकृति के प्रति जो प्रेम प्रकट किया है वह अनुपम है। इनके काव्यों के अनुशीलन से तो ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि ने काव्य व्याज से प्रकृति के प्रति अपने हृदयोद्गार को व्यक्त किया है। रघुवंशम्, कुमारसम्भवम्, ऋतुसंहारम्, मेघदूतम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम् एवं मालविकाग्निमित्रम् इस बात को पूर्णतया सत्यापित करते हैं।

ऋतुसंहारम् एवं मेघदूतम् में तो मुख्यतः प्रकृति चित्रण ही है। रघुवंशम् में आश्रम, वन, समुद्र, गंगा–यमुना संगम एवं कुमारसम्भवम् में हिमालय आदि का हृदयावर्जक वर्णन किया है।

जहाँ तक प्रकृति सरंक्षण के संदर्भ में अभिज्ञानशाकुन्तलम् की बात है तो कहा जा सकता है कि यदि किसी ने इस नाटक का अध्ययन या श्रवण कर लिया है तो वह प्रकृति प्रेमी बन जायेगा।

राजा दुष्यंत जब कण्व ऋषि के आश्रम में प्रवेश करते हैं तो अपनी सेना

को आश्रम में साथ नहीं ले जाते हैं ताकि आश्रम के स्वाभाविक जीवन में कोई बाधा न हो। अभिज्ञानशाकुन्तलम् की नायिका कृशकाय है जो कण्व ऋषि की आज्ञानुसार पौधों में जल सेंचन का कार्य करती है।

शकुन्तला तो जब तक पौधों में पानी नहीं देती थी तब तक स्वयं पानी नहीं पीती थी और श्रृंगार प्रिया होने पर भी वह फूल पत्ते नहीं तोड़ती थी –

''पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या,
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः,
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।''[9]

जब शकुन्तला अपने पतिगृह के लिए आश्रम से विदा हो रही थी तब पूरा तपोवन उसके वियोग से व्याकुल हो गया था। हरिणियों ने कुशा ग्रास को उगल दिया था, मोरों ने नाचना छोड़ दिया था एवं लताएं पत्ते गिरा रही थी मानो आँसुओं को छोड़ रही हो –

''उद्गलित दर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।
अपसृत–पाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः।।''[10]

गद्य सम्राट बाण भी प्रकृति के उपासक हैं। उनकी रचनाओं में सर्वत्र प्रकृति के साथ तदात्म्य दृष्टिगत है जैसे– प्रभात, विन्ध्याट्वी, पम्पा सरोवर, अच्छोद सरोवर, जाबालि आश्रम, हेमकूट आदि का मनोहारी वर्णन किया है।

कादम्बरी के कथामुख में शूद्रक की सभा में शुक के द्वारा शिकार के लिए तत्पर शबर सेनापति की निन्दा करके बाणभट्ट ने अपने प्रकृति प्रेम को अभिव्यक्त किया है –

''अहो मोहप्रायमेतेषां जीवितं साधुजन विगर्हितं च चरतिम्।

तथाहि–पुरुषपिशितोपहारे धर्मबुद्धिः आहारः साधुजन विगर्हितो मधुमांसादि,

श्रमो मृगया शास्त्रं शिवारुतम्, उपदेष्टारः सदसतां कौशिकाः।।''[11]

महाकवि भारवि की कृति किरातार्जुनीयम् प्रकृति चित्रण की अनुपम रचना है। इसका तो कथानक ही महाभारत के वनपर्व पर आधारित है जो भारवि के प्रकृति प्रेम का द्योतक है।

महाकवि माघ ने भी शिशुपालवधम् में समुद्र, पर्वत, ऋतु, संध्या, प्रभात, नदी, वन आदि का वर्णन करके प्राकृतिक जीवन की श्रेष्ठता को प्रकट किया है।

संस्कृत नाट्यकारों में श्रेष्ठता की दृष्टि से कालिदास के पश्चात् भवभूति का ही स्थान है एवं उत्तररामचरितम् भवभूति की श्रेष्ठ नाट्यकृति है। इस नाटक के प्रथम अंक में चित्रवीथी में विश्वामित्र के आश्रम प्रसंग से प्रारंभ होकर सीता की अग्निपरीक्षा पर्यंत चित्र हैं। यह प्रसंग भवभूति के प्रकृति प्रेम का स्पष्ट परिचायक है। इसी नाटक में तृतीय अंक में तमसा एवं मुरला नदी पात्रों का मानवीकरण करके जल स्रोतों के संरक्षण का संदेश दिया है।

निष्कर्ष

ऋग्वेद से प्रारंभ करके अद्यावधि पर्यंत संस्कृत साहित्य के अध्ययन के विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि संस्कृत भाषा का संपूर्ण साहित्य प्रकृति के प्रति मानवीय संवेदनाओं से युक्त है एवं प्रकृति को जीवन के अभिन्न पात्र के रूप में चित्रित किया है। नदी, समुद्र, पर्वत, वनस्पति, पशु–पक्षी आदि देवता एवं मानव के रूप में वर्णित हैं। संस्कृत साहित्य के सभी प्रमुख ग्रंथों में प्रकृति एवं पर्यावरण की महत्ता को प्रमुख स्थान दिया गया है एवं प्रकृति का चित्रण बहुत ही सरल एवं मनोरम शब्दों में किया गया है जो यह संदेश देता है कि जब तक पर्यावरण सुरक्षित है तब तक ही जीवन सरस एवं रम्य है।

वर्तमान में प्रकृति के अविवेकपूर्ण दोहन के फलस्वरूप हमारा पर्यावरण निरंतर दूषित हो रहा है जिससे हम विविध व्याधियों से ग्रसित होते जा रहे हैं किंतु यदि हम हमारे संस्कृत साहित्य में वर्णित प्रकृति प्रेम का व्यावहारिक जीवन में अनुशीलन करें तो निस्संदेह अनायास ही हमारे पर्यावरण का संरक्षण होगा एवं हम अपने वास्तविक हितों की ओर अग्रसर होंगे।

REFERENCES

1. ऋग्वेद 1/22/19
2. ऋग्वेद 10/186/3
3. अथर्ववेद 12/1/20
4. अथर्ववेद 12/1/35
5. रामायण – वाल्मीकि 2/91/09
6. महाभारत – वेदव्यास, अनुशासन पर्व 58/26
7. वही 58/27
8. स्वपनवासवदत्तम् – भास 4/3
9. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – कालिदास 4/9
10. वही 4/12
11. कादम्बरी (कथामुखम्) – बाणभट्ट, सम्पादक–डॉ उमाकान्त चतुर्वेदी, हंसा प्रकाशन, पृष्ठ 244, संस्करण 2015